International Journal of Arts, Humanities and Social Studies

ISSN Print: 2664-8652
ISSN Online: 2664-8660
Impact Factor: RJIF 8
IJAHSS 2025; 7(1): 39-42
www.socialstudiesjournal.com
Received: 05-12-2024
Accepted: 07-01-2025

डॉ. सुमित्रा गुप्ता
(प्राचार्या), विषय–भूगोल, जी.डी. एम.एल. पटवारी पी.जी. महिला महाविद्यालय, श्रीमाधोपुर, सीकर, राजस्थान, भारत

Corresponding Author:
डॉ. सुमित्रा गुप्ता
(प्राचार्या), विषय–भूगोल, जी.डी. एम.एल. पटवारी पी.जी. महिला महाविद्यालय, श्रीमाधोपुर, सीकर, राजस्थान, भारत

पर्यावरण अवनयन एवं पारिस्थितिकी समस्याएं

सुमित्रा गुप्ता

DOI: https://doi.org/10.33545/26648652.2025.v7.i1a.152

सारांश
पर्यावरण और पारिस्थितिकी की कार्य प्रणाली प्रकृति की स्वनियमन व्यवस्था द्वारा संचालित होती है। पर्यावरण के तत्व पारिस्थितिकी का नियन्त्रण कर जीवन विकास के लिए आवश्यक परिस्थितियों का निर्माण करते हैं। यह व्यवस्था तब तक पलती रहती है जब तक पर्यावरण में संतुलन बना रहता है, लेकिन जब प्राकृतिक या मानवीय कारणों से पर्यावरण के किसी तत्व को क्षति पहुंचती है तो पहले वह स्वनियामक व्यवस्था के अन्तर्गत संतुलित होने का प्रयास करती है। लेकिन जब उसकी सहन सीमा से अधिक आघात होता है तो उसका संतुलन बिगड़ने लगता है। पर्यावरण के अवनयन से विकास की सारी प्रक्रिया उल्टी दिशा में मुड़ने लगती है जो अवनति का मार्ग प्रशस्त करती है। ध्यातव्य है कि प्रकृति का लक्ष्य विकास है, विनाश नहीं।

कूटशब्दः पारिस्थितिकी, प्राकृतिक, अवनति, विकास, संतुलन, पर्यावरण, विनाश, आघात

प्रस्तावना
पर्यावरण भौतिक तत्वों, शक्तियों और परिस्थितियों का एक ऐसा समुच्चय है जो अपने प्रभावों को अनेक रूपों में चरितार्थ करता है। इस प्रकार पर्यावरण के तत्व अनेक विशिष्टताओं के समूह हैं, इन पर्यावरण के तत्वों को दो प्रधान समूहों में विभक्त किया जाता है–अजैव तत्व (Physical or Abiotic Elements) तथा जैव तत्व (Biotic Elements)। अजैव तत्वों में जलवायु, स्थल, जल, मृदा, खनिज एवं चट्टान तथा भौगोलिक स्थिति प्रमुख है। जैव तत्वों में पौधे और जीव–जन्तु प्रमुख हैं। अतः पर्यावरण का सामान्य अर्थ भौतिक परिवेश (Natural Environment) से है जो पृथ्वी के जैव जगत को आवृत किये हुए है तथा जिसके प्रभाव से जीवन स्पन्दित होता है। अतः पर्यावरण भौतिक तत्वों, दशाओं और प्रभावों का दृश्य और अदृश्य समुच्चय है जो जीवधारियों को परिवृत्त कर उनकी अनुक्रियाओं को प्रभावित करता है और स्वयं भी उनसे प्रभावित होता रहता है। जैविक अजैविक संघटक प्रकृति की अविभाज्य रचना है। इसके घटकों की परस्पर अनुक्रिया से पृथ्वी पर जीवन का विकास हुआ। अतः जीवों को प्रभावित करने वाली परिस्थितियों को पर्यावरण कहा जाता है। पृथ्वी तल पर उपस्थित पर्यावरण और जीवधारियों के पारस्परिक अन्तर्सम्बन्धों के समुच्चय को काल और क्षेत्र के परिप्रेक्ष्य में पारिस्थितिकी तन्त्र (Eco-System) कहा जाता है। इस सन्दर्भ में पृथ्वी वृहत्तम् पारिस्थतिकी तन्त्र है जहाँ विविध भौतिक परिवेशों के कारण नाना प्रकार की वनस्पतियाँ और जीव–जन्तु पाये जाते हैं। जीवों में मानव सर्वाधिक शक्तिशाली कारक है जो अपने कौशल, चातुर्य, तकनीक और अदम्य साहस से यथा पर्यावरण के तत्वों को प्रभावित करता है। यह प्रभाव अतिक्रमण का रूप भी धारण कर लेता है। फलतः जाने–अनजाने मानव पर्यावरणीय तत्वों के साथ दुर्व्यवहार करने लगता है जिससे पर्यावरणीय तत्वों की गुणवत्ता का ह्रास होने लगता है। पर्यावरण के ह्रास से पारिस्थितिकी का संतुलन बिगड़ जाता है क्योंकि पारिस्थितिकी पर्यावरण के सहयोग से कार्य करती है। पर्यावरण के अवनयन से जीवन की गुणवत्ता घटने लगती है जिसके कारण जीवन का लय बदलने लगता है। जब गतिरोध बढ़ने लगता है तो विकास की सारी प्रक्रिया उल्टी दिशा में मुड़ने लगती है, जो अवनति का मार्ग प्रशस्त करती है।

पर्यावरण अवनयन का अर्थः पूर्व वर्णित है कि पर्यावरण अजैविक और जैविक संघटकों का एक ऐसा समुच्चय है जो जीवधारियों के जीवन विकास के लिए अनुकूल निवास्य प्रदान करता है। इस निवास्य की सुरक्षा के लिए पर्यावरण के तत्व निरन्तर क्रियाशील रहते हैं और साथ ही आपसी तालमेल बनाये रखते हैं। लेकिन जब पर्यावरण के तत्व अपने नैसर्गिक गुणों के विपरीत प्रभाव डालते हैं तो इसके फलस्वरूप जीवधारियों का जीवन संकटमय हो जाता है। पर्यावरण की इसी परिवर्तित स्थिति को अवनयन या ह्रास (Environmental Degradation) या पर्यावरण अवक्रमण कहा जता है। पर्यावरण ह्रास तब शुरू होता है जब जीवधारी, विशेषकर मनुष्य उसकी उपेक्षा एवं अवमानना करने

लगता है। इस क्रम में पर्यावरण के प्रति किये गये अमैत्रीपूर्ण कार्य तथा प्रदूषण विस्तार, वन विनाश, अधिक जनभार, संसाधनों का अनुचित दोहन आदि स्वनियमन जन्य क्षमता से अधिक हो जाता है तो उसके फलस्वरूप पर्यावरण के तत्व पंगु होने लगते हैं। इसका सीधा प्रभाव पारिस्थितिकी पर पड़ता है। पारिस्थितिकी के असंतुलन से पर्यावरण के ह्रास का आभास होता है। स्पष्ट है कि पर्यावरण के ह्रास के लिए मानव सबसे बड़ा कारण है। अतः पर्यावरण अवनयन का अर्थ है मानवीय क्रिया–कलापों द्वारा भौतिक तत्वों का इस सीमा तक गुणात्मक ह्रास कि वे स्वनियमन व्यवस्था में पंगु हो जाय तथा अपने कुप्रभावों से जैव जाति को नुकसान पहुंचाने लगे।

पर्यावरण ह्रास की प्रक्रियाः पर्यावरण के ह्रास की प्रक्रिया दो प्रकार से कार्य करती है। प्रथम जब प्राकृतिक पर्यावरण का मानवीय क्रिया–कलापों पर उचित प्रभाव पड़ता है तो उस प्रभाव को अनुकूल बनाये रखने के लिए मानव पर्यावरण को प्रभावित करता है। परस्पर प्रभाव की प्रक्रिया जब तक क्षम्य सीमा में आबद्ध रहती है तो पारिस्थितिकी का संतुलन बना रहता है। लेकिन जब मानवीय प्रभाव सीमा का अतिक्रमण करता है तो वातावरण पर नकारात्मक प्रभाव पड़ने लगता है। इससे प्रकृति के तत्व स्वयं कुण्ठित होकर कुप्रभाव को जन्म देते हैं। जब हम पर्यावरणीय संसाधनों का दोहन करते हैं तो एक स्थिति यह भी आ जाती है जब उस संसाधन की कमी होने के बावजूद हम उसके विदोहन को बनाये रखना चाहते हैं। यह क्रिया पर्यावरण को पंगु बना देती है। अतः जब मानवीय क्रिया–कलापों का बोझ प्राकृतिक संसाधनों पर बढ़ता जाता है। इस प्रक्रिया को निम्न ढंग से समझा जा सकता है–

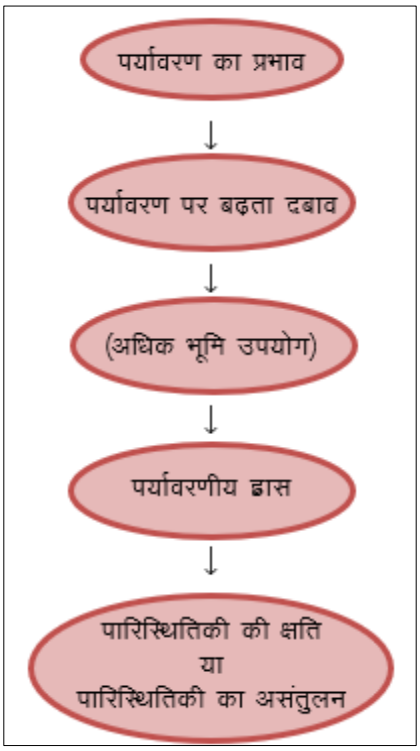

पर्यावरण ह्रास तभी होता है जब उसके प्रति शत्रुतापूर्ण व्यवहार किया जाय। यदि उसके साथ सहयोग का रास्ता अपनाया जाय तो छोटी–छोटी क्षति को स्वयं पर्यावरण के तत्व संवर्धित कर संतुलन बनाये रखते हैं। जैव जगत की मूलभूत आवश्यकतायें चूंकि पर्यावरण के तत्वों से पूरी होती है, अतः स्वाभाविक है इनके दोहन में मानव समाज ने संयम नहीं बरता है। मन पसन्द वस्तु की प्राप्ति के लिए वह कृत्रिम साधनों का उपयोग करता रहा है भले वह पर्यावरण को ह्रास पहुचाता हो। औद्योगिक राष्ट्रों में यह प्रक्रिया प्रबल रही है। स्पष्ट है कि पर्यावरण अवनयन की प्रक्रिया प्राकृतिक और मानवीय दोनों से सम्बन्धित है। लेकिन मानवीय क्रिया–कलाप इसके लिये अधिक जिम्मेदार है जिनमें विशेष उल्लेखनीय हैं–

- प्राकृतिक वनस्पति का विनाश, फलतः पारिस्थितिकी तन्त्र की नैसर्गिक कार्यशैली में व्यवधान।
- जैविक वनस्पति का विनाश फलतः पौधे और प्राणियों की जातियों का विलोप और उल्टा पारिस्थितिकी पिरामिड का सृजन।
- वनस्पतियों और पातलू जीवों का प्रतिस्थापन– फलतः पारिस्थितिकी की गुणवत्ता में ह्रास।
- जैव आनुवंशिकी में परिवर्तन– फलतः जैविक प्रतिरोधन क्षमता का ह्रास।
- प्राकृतिक संसाधनों का अनियोजित दोहन– फलतः पर्यावरण का गुणात्मक ह्रास और संसाधनों का अभाव।
- कृत्रिम रसायनों का अनियंत्रित उपयोग– फलतः विविध प्रकार के प्रदूषण की सम्भावना।
- पर्यावरणीय प्रक्रमों में परिवर्तन– फलतः विविध प्रकार की मानव निर्मित आपदाओं को निमंत्रण।
- वायुमण्डलीय गैसों की गुणवत्ता में हेरफेर– फलतः नई पर्यावरणीय समस्याओं का जन्म।
- आर्थिक कार्यों के लिये प्रकृति के संसाधनों का अपव्यय– फलतः अनेक संसाधनों का विलोप एवं पर्यावरणीय प्रभाव में ह्रास।
- प्रकृति के प्रति संवेदनहीनता– फलतः लालची, स्वार्थी और कदाचारी मनोवृत्ति को बढ़ावा।

पर्यावरण ह्रास का प्रारूपः असीमित मानवीय हस्तक्षेप के कारण पर्यावरणीय संतुलन प्रभावित होता है। इसके परिणाम चार रूपों में दृष्टव्य होते हैं।

स्पष्ट है कि अनियंत्रित मानवीय हस्तक्षेप से पर्यावरण का अवनयन होता है। जल, थल एवं वायु का प्रदूषण इसके प्रमुख उदाहरण हैं। ये आधारी तत्व जब प्रदूषित हो जाते हैं तो प्रकृति का ढांचा ही जीवन के विनाश का आह्वान करने लगता है। इसी तरह मिट्टी एवं वनस्पति के अनिर्बाधित एवं अनियन्त्रित प्रयोग से भूमिक्षरण एवं वनस्पति विहीन भूखण्डो (मरूस्थल) का विकास होता है। नदियों की घाटियों में अत्यधिक अवसादों के जमाव से तथा जलवायु की शुष्कता से नदियों का विलोप हो जाता है।

ह्रासमान पर्यावरण के प्रमुख कुप्रभावः मनुष्य अपने पर्यावरण की उपज है। यही कारण है कि मानव समाज में विविधता देखने को मिलती है। लेकिन मानव की कुछ आधारभूत आवश्यकताएं सर्वत्र समान रूप की होती हैं जैसे स्वच्छ वायु, शुद्ध जल, उपजाऊ मृदा, पेड़–पौधे और जीव–जन्तु, खनिज–सम्पदा, अनुकूल मौसम एवं जलवायु आदि। इन आधारी भौतिक तत्वों की गुणवत्ता में ह्रास की दशा में मानव स्वास्थ्य, कार्य क्षमता, जनन क्षमता, जीवन अवधि, वंश वृद्धि आदि पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। स्वच्छ वायु जीवन संचार का आधार है। प्रकृति ने इसका अपार भण्डार प्रदान किया है। सदियों से मानव इसका अनिर्बाधित उपयोग करता आ रहा है लेकिन बढ़ते औद्योगीकरण, नगरीकरण, यातायात के साघन और विविध परीक्षणों के कारण अनेक प्रकार के प्रदूषक (Pollution) हवा में मिल गये हैं जिससे उसके स्वाभाविक गुणों में ह्रास होते जा रहे हैं। हवा की तरह जल भी जीवन का आधार है. लेकिन धरातलीय और भूमिगतजल, औद्योगिक कचरा, नगरीय मलमूत्र, जलजीवों के ह्रास और जल–प्रवाह में अवरोध के कारण प्रदूषित होकर पीने योग्य नहीं रह गया है। भूमि के साथ सौतेला व्यवहार मानव का स्वभाव बनता जा रहा है। अधिक उत्पादन के

लिए मृदा को कृत्रिम रूप से उपयोगी बनाया जा रहा है जिससे उसकी गुणवत्ता तेजी से घट रही है। पेड़–पौधों और जीव–जन्तुओं के प्रति शत्रुतापूर्ण व्यवहार ने पर्यावरण ह्रास का द्वार खोल दिया है। वन विनाश का भयंकर प्रभाव मौसमी परिवर्तन भूमिक्षरण आदि के रूप में प्रकट होने लगा है। पशुओं की संख्या घट रही है तथा कुछ प्रजातियों का लोप हो रहा है। मनुष्य प्रकृति की गोद में पलता आ रहा है लेकिन उद्योग, शहरीकरण, और भौतिक सुख की आदत ने प्रकृति के सौन्दर्य को विनष्ट कर दिया है। इससे प्राकृतिक सौन्दर्य बोध की भावना तेजी से घटी है। आज मनोरंजन प्रकृति की कीमत पर किया जा रहा है। खनिज दोहन पर्यावरण ह्रास को अनेक ढंगों से प्रभावित करता है। भूमि के तोड़–फोड़ के साथ ऐसे धूल–कण वायुमण्डल में चले जाते हैं जो हवा को प्रदूषित करते हैं। कोयला और तेल का धुंआ इसमें अग्रणी है। मौसम की अनुकूलता जीवन संचार को सुगम और प्रतिकूलता बाधा उत्पन्न करती है। आज वायुमण्डल के ह्रासमान होने के कारण मौसमी प्रकोप–तूफान, झंझावात, सूखा आदि तेजी से बढ़े हैं। उपरोक्त प्रक्रियायें पर्यावरण के तत्वों में अव्यवस्था उत्पन्न कर उसकी गुणवत्ता को ह्रासमान कर देती है जिससे पर्यावरण अस्वाभाविक व्यवहार करने लगता है। जब ऐसी स्थिति प्रकट होती है तब हम उसका कारण ढूंढ़ने लगते हैं। कोयला, तेल और गैस का उपयोग कर जिस तीव्र गति से विकास को आगे बढ़ाया गया है. उसकी जितनी प्रशंसा की जाय कम है। लेकिन विकास के कारण हवा, जल, मृदा, वनस्पति और संसाधनों का जो संकट उपस्थित हुआ है वह भी कम भयावह नहीं है। मानव के तकनीकी विकास ने संसाधनों के दोहन की गति इतनी तीव्र कर दी है कि इसे संसाधनों पर डाका डालना कहा जाने लगा है। ब्रिटेन अपना कोयला खर्च कर चुका है और अब ऊर्जा की पूर्ति के लिए आयात पर आधारित है। उसके पर्यावरण का संतुलन बिगड़ता जा रहा है लेकिन कोयला, तेल और गैस की अधिकाधिक उपयोग की आदत में कोई परिवर्तन नहीं आ रहा है। ऐसी ही दशा अनेक पश्चिमी देशों की है। ऊर्जा की कमी पूरा करने के लिए जर्मनी में अर्द्धनिर्मित आणविक बिजलीघरों का काम बीच में रोक दिया गया है क्योंकि विकिरण के डर से तीव्र जनआन्दोलन उठ खड़ा हुआ। रूस के चेर्नोबिल अणु मट्टी में रिसाव के कारण यूरोप में हड़कम्प मच गयी थी। स्पष्ट है कि पर्यावरण का ह्रास मानवीय अनुदारता, तीव्र औद्योगिक विकास, नगरीकरण, यातायात और युद्ध उन्माद से जुड़ा प्रश्न है।

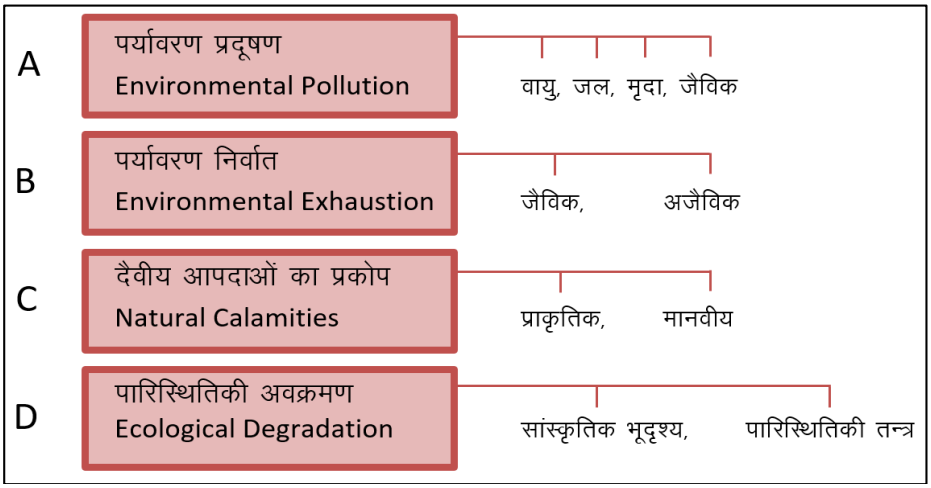

पर्यावरण अवनयन और पारिस्थितिकी का असंतुलनः पर्यावरण के प्रति बढ़ती अवमानना समस्त जीवधारियों के लिए संकट का आमंत्रण है। पर्यावरण बोध का अभाव विकासशील देशों की तुलना में विकसित देशों में अधिक है, जहाँ प्रदूषण की घटनाएं संकट बिन्दु तक पहुँच गई है। अमेरिका जैसे विकसित देश में प्रतिदिन मोटर गाड़ियों से 22.5 करोड़ टन विषैला धुआं वायुमण्डल में जाता है जो विनाशकारी बनता जा रहा है। इसी प्रकार फ्रांस में शक्ति केन्द्रों से प्रतिवर्ष 2 लाख टन सल्फर डाई आक्साइड वायुमण्डल में पहुँच रहा है, जो अम्ल वर्षा (Acid Rain) का कारण है। 1950 से 1959 के मध्य जापान की मिनीमाता खाड़ी में गिरने वाले दूषित जल में निहित पारा के कारण मछलियां प्रभावित हुई जिसको खाने से मछुआरे अपंग हो गये। इसी प्रकार भोपाल में गैस के रिसाव से हजारों जाने गई और लाखों लोग विभिन्न बीमारियों के शिकार हुए। चरनोबिल आणविक भट्टी (रूस 1986) में रेडियोधर्मी रिसाव भी भयंकर आपदा का सन्देश था। इससे यूरोप में हाहाकार मच गया और लोग अपने घरों से भागने के लिए बाध्य हुए। इस विपदा को टालने के लिए सोवियत रूस को विभिन्न कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था। हाल के खाड़ी युद्ध ने फारस की खाड़ी के जल को प्रदूषित कर दिया तथा लाखों जल–जीव नष्ट हो गये। तेल के कुओं की गैस की आग कई माह तक जलती रही तथा आकाश धुएँ से आच्छादित हो गया। इससे सूर्य के प्रकाश में कमी आई और हवा प्रदूषित हुई। 1981 में एक अध्ययन से उद्घाटित हुआ कि विकासशील देशों में कीटनाशक दवाओं के प्रयोग से 10 हजार लोग प्रतिवर्ष कालकवलित होते हैं तथा 4 लाख से अधिक लोग इनके कुप्रभावों से बीमार होते हैं। एक अन्य अध्ययन के अनुसार हरितक्रान्ति को सफल बनाने में गरीब देशों के लगभग 370000 लोग कीटनाशक दवाओं के कुप्रभाव से असाध्य रोगों की चपेट में आ गये हैं। ऐसे लोगों में एक तिहाई भारतीय हैं। इन दवाओं से कैंसर, आंख और सांस की बीमारियाँ तेजी से फैल रही हैं। डी०डी०टी० कीट नाशक अनेक देशों में अवैध घोषित किया जा चुका है लेकिन अब भी इसका प्रयोग भारत में हो रहा है।

निष्कर्ष

पर्यावरण और पारिस्थितिकी के विविध पक्षों के अध्ययन से स्पष्ट है कि पर्यावरण और पारिस्थितिकी की कार्य प्रणाली प्रकृति की स्वनियमन व्यवस्था द्वारा संचालित होती है। पर्यावरण के तत्व पारिस्थितिकी का नियन्त्रण कर जीवन विकास के लिए आवश्यक परिस्थितियों का निर्माण करते हैं। यह व्यवस्था तब तक चलती रहती है जब तक पर्यावरण में संतुलन बना रहता है, अर्थात पर्यावरण के तत्व अपने गुणों के अनुसार आपस में तथा जैवी घटक के साथ परस्पर क्रिया करते हैं। लेकिन जब प्राकृतिक या मानवीय कारणों से पर्यावरण के किसी तत्व को क्षति पहुंचती है तो पहले वह स्वनियामक व्यवस्था के अन्तर्गत संतुलित होने का प्रयास करता है। लेकिन जब उसकी सहन सीमा से अधिक

आघात होता है तो उसका संतुलन बिगड़ने लगता है। जीवों में मानव सर्वाधिक शक्तिशाली कारक है जो अपने कौशल, चातुर्य, तकनीक और अदम्य साहस से पर्यावरण के तत्वों को प्रभावित करता है। यह प्रभाव, अतिक्रमण का रूप भी ग्रहण कर लेता है। फलतः जाने–अनजाने मानव पर्यावरणीय तत्वों के साथ दुर्व्यवहार करने लगता है जिससे पर्यावरणीय तत्वों की गुणवत्ता ह्रास होने लगती है। पर्यावरण के ह्रास से पारिस्थितिकी का संतुलन बिगड़ जाता है क्योंकि पारिस्थितिकी पर्यावरण के सहयोग से कार्य करती है। पर्यावरण के अवनयन से जीवन की गुणवत्ता घटने लगती है जिसके कारण जीवन का लय (Life Cycle) बदलने लगता है। जब गतिरोध बढ़ने लगता है तो विकास की सारी प्रक्रिया उल्टी दिशा में मुड़ने लगती है जो अवनति का मार्ग प्रशस्त करती है। ध्यातव्य है कि प्रकृति का लक्ष्य विकास है, विनाश नहीं। अपनी उन्नति को सत्त् बनाये रखने के लिए आदिकाल से आधुनिक काल तक मानव समाज विविध प्रयोग करता रहा है। मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भौतिक संसाधनों का प्रयोग मानव के ज्ञान–विज्ञान और तकनीकी विकास पर आधारित रहा है। संसाधन दोहन, अत्यधिक ऊर्जा प्रयोग, औद्योगीकरण, शहरीकरण, सौर–मण्डलीय क्रिया–कलाप और प्रकृति के प्रति बढ़ती उपेक्षा की भावना से पर्यावरण ह्रास की एक ऐसी विकट परिस्थिति पैदा हो गई है कि इसके सम्बन्ध में आज सोचना आवश्यक हो गया है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. प्रसाद, सुकदेव, (1988), 'पर्यावरण संरक्षण', साहित्य भण्डार, इलाहाबाद।
2. प्रसाद, शुकदेव, (1989), 'पर्यावरण और हम', प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली।
3. शर्मा, विष्णुदत्त, (1989), 'पर्यावरणीय प्रदूषण', हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़।
4. शर्मा, विष्णुदत्त, (1991), 'पर्यावरणीय भूगोल', आर्य प्रकाशन मण्डल, दिल्ली।
5. व्यास, श्याम मनोहर, (1994), 'पर्यावरण–विश्वकोष', यूनिवर्सिटी बुक हाउस, प्रा.लि. जयपुर।
6. सिंह, सविन्द्र, (1996), 'पर्यावरण भूगोल', प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
7. बहुगुणा, सुन्दरलाल, (1997), 'पर्यावरण और विकास', सर्वसेवा संघ प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी।
8. व्यास, हरिश्चन्द्र, (2004), 'पर्यावरण शिक्षा', विद्या विहार, नई दिल्ली